Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 15, Issue No. 12, December-2018, ISSN 2230-7540

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी की हिन्दी आलोचना में मानसिक संवेदना

Renu Mittal*

Assistant Professor, RKSD College, Kaithal, Haryana

सार – *भारतेन्दु युग में कई साहित्यिक भाषाओं का नवीनी करण हुआ। इनमें से एक आलोचना भी थी। हिन्दी आलोचना की वास्तविक शुरूआत तो रीतिकाल से थोड़ा बाद भारतेन्दु युग से होती है, लेकिन इसके पहले आदिकाल और भक्तिकाल में भी कुछ आलोचनात्मक टीका टिप्पणी हुई है। हिन्दी आलोचना के विकास क्रम को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से जाना जा सकता है। आदिकालीन आलोचना आदिकालीन आलोचना- आचार्य रामचन्द्र शूक्ल ने आदिकाल को वीरगाथा काल नाम बहुत समझ बूझकर दिया है। उनकी दृष्टि में इस काल का केन्द्रीय साहित्य रासो-काव्य है न कि सिद्ध-नाथों की बानियाँ। भाषा की दृष्टि से हिन्दी की वास्तविक शुरूआत जितने स्पष्ट रूप से रासो में दिखाई देती है उतनी इन अपभ्रंश आधारित बानियों में नहीं। आ. रामचन्द्र शुक्ल के नामकरण में 'वीर' शब्द ही नहीं 'गाथा' का भी विशिष्ट अर्थ है।'गाथा' के साथ शौर्य और 'शिवैलरी' के तत्व जुड़े हुए हैं।*

---------------------------------x---------------------------------

प्रस्तावना

हिन्दी क्षेत्र की व्यापकता का वास्तविक प्रमाण या तो आदिकाल में मिलता है या फिर आधुनिक काल में। अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने द्वितीय व्याख्यान के आरम्भ में कहते हैं, "हमने बताया है कि इस बात का निर्णय करना कठिन है कि अवधी और ब्रजभाषा क्षेत्र में उत्पन्न और वही की भाषा बोलने वाले लोगों ने किस प्रकार के साहित्य की रचना की थी जिसका परवती विकास अवधी और ब्रजभाषा के साहित्यिक ग्रन्थ हैं, क्योंकि 10वीं से 14वीं शताब्दी के भीतर इन क्षेत्रों में कोई रचना हुई भी हो तो उसका प्रामाणिक रूप हमें प्राप्त नहीं।

भक्तिकालीन आलोचना

भक्तिकालीन आलोचना भक्तिकालीन आलोचना गियर्सन, रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति के उदय की व्याख्या तीन भिन्न रूपों में करते है। ग्रियर्सन के लिए वह एक वाह्य प्रभाव है, रामचन्द्र शूक्ल के लिए वह वाहरी आक्रमण की प्रतिक्रिया है, और हजारी प्रसाद द्विवेदी उसे महज भारतीय चितन परम्परा का अपना स्वतः स्फूर्त विकास मानते हैं। ग्रियर्सन की इसाई प्रभाव वाली धारणा अब बहुत विचारणीय नहीं रह गई। हाँ, रामचन्द्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी की व्याख्याओं में दृष्टिगत अंतर ध्यान देने योग्य हैं आचार्य शुक्ल बाहय इस्लामी तत्वों से क्रिया प्रतिक्रिया को अपनी इतिहास सम्बन्धी दृष्टि में बराबर महत्व देते हैं, जब कि आचार्य द्विवेदी की निगाह परंपरा के अपने विकास पर अधिक केन्द्रित हैं। आचार्य शुक्ल अपने इतिहास में भक्ति के उदय की व्याख्या करते हुए इस बात का स्पष्ट उल्लेख करते है कि यह धारा एक रूप में दक्षिण से उत्तर की ओर आ रही थी- "भक्ति का जो सोता दक्षिण से उत्तर की ओर आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में लेने के लिए पूरा स्थान मिला।

सूरदास

सूरदास- सूरदास के काव्य का जीवन-क्षेत्र सीमित है, पर उनकी लोकप्रियता व्यापक है इसका मुख्य कारण यह है कि उनका सीमित क्षेत्र गृहस्थ जीवन और परिवार से जुड़ा हैं इसके पहले सिद्धों नाथों के विरक्त व्यक्तित्व मे तो परिवार चित्रण का प्रश्न ही नहीं उठतां 'पृथ्वीराज रासउ' और 'पदमावत' में परिवार बसने का उपक्रम और संघर्ष तो चलता रहता है, पारिवारिक जीवन के अपने चित्र अपेक्षा कृत कम है। सूर की विशेषता इस बात में है कि मुक्तक पदों का विधान अपनाकर भी उन्होंने गृहस्थ जीवन के चित्रण को केन्द्र में रखा है। ठेठ हिन्दी क्षेत्र में ब्रज का ग्रामीण अंचल (ब्रज का मूल अर्थ ही हुआ गोचारण का स्थल) और महर के मंदिर पर बधाई बजने का दृश्य, मानों नंद

www.ignited.in

का पूरा पारिवारिक दृश्य आंखों के सामने आ जाता हैं यही सूर के कृष्ण की लीला-भूमि हैं पारिवारिक जीवन के हर कोण से यहाँ चित्र उकेरे गये हैं मध्यदेशीय जीवन विशेषत सारे तनावों और आघातों को परिवार के आत्मीय वातावरण में झेलने का अभ्यस्त रहा हैं भक्तिकाल के उदय की व्याख्या करते हुए जब आचार्य शुक्ल इस निष्कर्ष पर पहुँचते है "इन कृष्णोपासक वैष्णवों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया, या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी।" तो उनकी आशंसा समझ में आती है।

रीतिकालीन आलोचना

हिन्दी आलोचना का इतिहास रीति काल के थोड़ा पहले शुरू होता है। सच तो यह है कि रीतिकाल का रीतिबद्ध साहित्य रीतिवादी आलोचना से प्रभावित है और लक्षणों के उदाहरण रूप में रचा गया है। रीतिकालीन लक्षण ग्रन्थों का उपजीव्य संस्कृत का काव्य शास्त्र है। संस्कृत काव्यशास्त्र के चार सम्प्रदाय प्रसिद्ध है -

1. भामह, उद्भट आदि अलंकार सम्प्रदाय
2. कुंतक का वक्रोक्ति सम्प्रदाय
3. वामन का रीति सम्प्रदाय
4. आनन्द वर्धन का ध्वनि सम्प्रदाय।

रीति काल मे हिन्दी का जो काव्यशास्त्र रचा गया वह इन्हीं सम्प्रदायों की नकल पर। हिन्दी में काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले-पहल आचार्य केशव ने ही किया।

आचार्य शुक्ल के अनुसार केशव के पचास वर्षो बाद रीतिग्रन्थों की जो परम्परा हिन्दी मेंचली उसने परवती आचायों के आधार पर काव्य शास्त्रीय विवेचना की। रीतिकाल के आचार्य लक्षणकार होते थे और उदाहरण प्रस्तुत करते समय कविता करते थे। पं. रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकालीन काव्य शास्त्र की सीमाओं की ओर संकेत करते हुए लिखा है, "इस एकीकरण (आचर्यत्व और कवित्व) का प्रभव अच्छा नहीं पड़ा आचर्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन और पर्यालोचन-शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म में प्रयुक्त हो जात थे। काव्यांगों का विस्तृत-विवेचन तर्क द्वारा खण्डन-मण्डन, नये-नये सिद्वान्तों का प्रतिदान आदि कुछ भी न हुआ। इसका कारण यह भी था कि उस समय गद्य का विकास नहीं हुआ था। जो कुछ लिखा जाता था वह पद्य मे ही लिखा जाता था। पद्य में किसी बात की सम्यक् मीमांसा या उस पर तर्क-वितर्क नहीं हो सकता। इस अवस्था में 'चन्द्रलोक' की यह पद्धति ही सुगम दिखाई पड़ी कि एक श्लोक या एक चरण में ही लक्षण कहकर छुट्टी ली।"

महाबीर प्रसाद द्विवेदी की आलोचना

महाबीर प्रसाद द्विवेदी की आलोचना- प्रसाद द्विवेदी की आलोचना- भारतेन्दु युग के लेखकों के साहित्य पर उनकी सहृदयता और जीवन्ता की छाप है तो द्विवेदी युग के साहित्य पर कर्तव्य परायणता और उपयोगिता की। द्विवेदी साहित्य को उपयोगिता की कसौटी पर अकते थे और उसे ज्ञानराशि का संक्षिप्त कोष मानते थे। उनका प्रभाव प्रत्येक साहित्यांग पर वे स्वयं सम्मान्य आलोचक थे। विविध पुरातत्व विषयों के सम्बन्ध में महाबीर प्रसाद द्विवेदी के लेखन का विवेचन करते हुए अपनी पुस्तक "महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण" में रामविलाश शर्मा लिखते है-"द्विवेदी जी के इस कोटि के लेखन का सीधा सम्बन्ध भारत भारती से वैसे ही है जैसे भारत की वर्तमान आर्थिक अवस्था के अत्याचार महाजनों की सूदखोरी और किसानों की तबाही की बातें करते हैं। तो लगता है कि हम प्रेमचन्द्र के कथा संसार में धूम रहे हैं। द्विवेदी जी कथा लेखक नही थें और मैथिलीशरण गुप्त की तुलना में कवि भी बहुत साधारण थे। किन्तु वैचारिक स्तर पर वह इन दोनों से आगे हैं इन दोनों के काव्य संसार और कथांससार की रूपरेखा उनके गद्य में स्पष्ट दिखाई देती हैं इस दृष्टि से उन्हें युग निर्माता कहना पूर्णतः संगत है।

रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना

रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना- रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना- गद्य साहित्य का प्रसार के द्वितीय उत्थान सं 1950-1975 के अन्तर्गत समालोचना पर विचार करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है-"पर यह सब आलोचना अधिकतर बहिरंग बातों तक ही रहीं। भाषा के गुण दोष, रस अलंकार आदि की समीचीनता की इन्ही सब परम्परगत विषयों तक पहुँची। स्थायी साहित्य में परिगणित होने वाली समालोचना जिसमें किसी कवि की अंतर्वृत्ति का सूक्ष्म व्यवच्छेद होता है उसकी मानसिक प्रवृत्ति की विशेषताएँ दिखाई जाती हैं। बहुत कम दिखाई पड़ी।"[29] आगे गद्य साहित्य के तृतीय उत्थान के अन्तर्गत समालोचना के विकास पर लिखते हुए उन्होंने कवियों की अंतः प्रवृत्ति की छानबीन की बात फिर की है।" उन्होनें उत्तम पुरूष का प्रयोग बचाते हुए अपने विषय में केवल यह लिखा-"इस इतिहास के लेखक ने तुलसी, सूर और जायसी पर विस्तृत समीक्षायें लिखी जिसमे प्रथम गोस्वामी तुलसी दास के नाम से पुस्तकार छपी

www.ignited.in

है। शेष दो क्रमशः भ्रमरगीत सार और जायसी ग्रन्थावली में सम्मिलित है।

व्यावहारिक समीक्षा

व्यावहारिक समीक्षा- शुक्ल जी ने समीक्षा सिद्धान्त साहित्यिक रचनाओं के आधार पर स्थापित किए हैं। अतः उनकी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षा में संगति है। वे जहाँ सिद्धान्त प्रतिपादन में प्रवृत्त होते हैं, वहीं प्रचुर उदाहरण और उद्धरण देकर अपने कथन को प्रमाणित कर देते हैं। साहित्य का पारायण करके निगमनात्मक पद्धति से जो सूत्र उन्होंने खोज निकाले हैं, वे ही उनके समीक्षा सिद्धान्त है। रचना में डूबकर विवेकपूर्वक निष्कर्ष निकालन ही आधुनिक और वैज्ञानिक पद्धति है। इस दृष्टि से शुक्ल जी आधुनिक और वैज्ञानिक समीक्षक हैं। सच्चे समालोचक की बहुत बड़ी पहचान यह है कि आलोच्य कृतियों के उत्कृष्ट स्थलों को वह पहचान सका है या नही। महत्वपूर्ण समीक्षक समकालीन रचनाकारों को निर्देश देता है, उन्हें प्रभावित करता है और कालजयी क्लासिकी साहित्य का पुनर्मूल्यांकन करता है।

डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना

रामविलास शर्मा की आलोचना रामविलास शर्मा की आलोचना डॉ. रामविलास शर्मा ने प्राचीन समाज और साहित्य का मूल्यांकन न करने की माक्र्सवादी पद्धति की व्याख्या करते हुए लिखा, “यह आवश्यक नहीं कि शोषक वर्ग ने जिन नैतिक अथवा कलात्मक मूल्यों का निर्माण किया है वे सभी शोषण मुक्त वर्ग के लिए अनुपयोगी हों....प्राचीन साहित्य के मूल्यांकन में हमें माक्र्सवाद से यह सहायता मिलती है कि हम उसकी विषय-वस्तु और कलात्मक सौन्दर्य को ऐतिहासिक दृष्टि से देखकर उनका उचित मूल्यांकन कर सकते हैं।” डॉ. शर्मा ने विषय वस्तु और ‘कलात्मक सौन्दर्य’ को ऐतिहासिक दृष्टि से देखकर भारतेन्दु युग, निराला और प्रेमचन्द का मूल्यांकन किया है। डॉ. शर्मा की इन कृतियों ने जहाँ आधुनिक साहित्य के विकास और उसकी लोक वादिता को स्पष्ट किया वहाँ प्रगतिवादी आलोचना को भी हिन्दी की जातीय परम्परा से जोड़ा। उनकी इन रचनाओं को प्रगतिवादी विचारधारा को हिन्दी जनता का विश्वास प्राप्त हुआ। भारतेन्दु युग में लेखक ने यह दिखाया है कि हिन्दी में नवीन चेतना किन व्यक्तियों और संस्थाओं के माध्यम से विकसित हा रही थी कौन सी परिस्थितियाँ उस चेतना के विकास का कारण थी। भारतेन्दु और उनके समकालीन अन्य साहित्यकारों का महत्व पं. रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास में भली-भाँति स्पष्ट कर चुके थे। डॉ. राम विलास शर्मा ने उन्हीं के काम को आगे ब प्रेमचन्द राजनैतिक और सामाजिक चेतना से युक्त कलाकार थे। इसलिए वे स्वभावतः हिन्दी की उस जनवादी परम्परा के विकासकता हो गए जिसका प्रवर्तन भारतेन्दु युग में हुआ था।

डॉ. नामवर सिंह की आलोचना

नामवर सिंह की आलोचना- नामवर सिंह की आलोचना- यदि प्रगतिशील आलोचना को जातीय और हिन्दी पाठकों की दृष्टि में विश्वसनीय बनाने का कार्य डॉ. रामविलाश शर्मा ने किया है तो उसे सक्रिय ‘आंदोलन के रूप में जीवित रखने और हिन्दी भाषी बुद्धिजीवी युवकों में तत्सम्बन्धी रुचि जाग्रत करेन का कार्य डॉ. नामवर सिंह कर रहे हैं। हिन्दी की नव्यतम रचनाओं के आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने अपना आलोचक जीवन ‘हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग’ से शुरु किया था। इसके अलावाँ उन्होंने पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के संक्षिप्त पृथ्वी राज रासो का सम्पादन किया है। ब्रेख्त और एफ.आर. लीविस के परम प्रशंसक नामवर सिंह ने अपना शोध-निबंध पृथ्वीराज रासो की भाषा पर लिखा है। सिद्धों की रचनाओं के विषय में उनका विचार है कि कुल मिलाकर सिद्धों की रचनाओं में जीवन के प्रति बहुत बड़ा स्वीकारात्मक दृष्टिकोण है। हेमचन्द के प्राकृत व्याकरण में अपभ्रश के जो सुन्दर दोहे उद्धृत हैं उनकी डॉ. नामवर सिंह ने अत्यत्न मार्मिक व्याख्या की है। संक्षिप्त पृथ्वीराज रासों में पाठशोध में पं. हजारी प्रसादी द्विवेदी का सहयोग करने के साथ-साथ डॉ. नामवरंसिंह ने रासों सम्बन्धी कुछ लेख भी दिए हैं। यद्यपि ये लेख परिचयात्मक ही हैं किन्तु एकाध स्थलों पर लेखक की सहृदयता के दर्शन होते हैं। गोरी के कैद में पड़े अंधे पृथ्वीराज की आत्मग्लानि अत्यन्त करुण है। पृथ्वीराज की इस मनोदशा का विश्लेषण करते हुए नामवर जी ने लिखा है “अभाव की पृष्ठभूमि में वे सुखमय दिन बड़े मोहक प्रतीत होते हैं फिर उस मोहक पृष्ठभूमि के विरोध में कैद की दाररूल दशा और भी मार्मिक हो उठी है।”

डॉ. नामवर सिंह ने बीरगाथाओं को क्षीयमाण मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब कहा है। इसकी सफाई देते हुए वे लिखते हैं कि- “आचार्य शुक्ल जैसे रस सिद्ध सहृदय समीक्षक ने जब रासों ग्रन्थों को सच्ची वीरगाथा के रूप में मिरूपित किया तो इसे आचार्य की सहृदया का अतिरिक्त आरोपण ही समझना चाहिए। उन्हें यदि इन काव्यों में मध्ययुगीन यूरोप के बैलेड काव्य की झलक दिखाई पड़ी तो इसे उनके अतीत प्रेम का प्रमाण पत्र मानना चाहिए। ऐसी बीरगाथाओं को तत्कालीन जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिफल कैसे स्वीकार किया जाए जबकि बख्तियार खिलजी ने केवल दो सौ घोड़ो से समूचे अंग वंग के राजाओं को एक लपेट में सर का लिया और जनता के कानों पर जूँ नहीं रेगी। जाहिर है कि समान्य जनता की भावना का उन समान्ती बीरगाथाओं से कोई मतलब नहीं था।” नामवर

सिंह की भाषिक संवेदना एवं शुक्ल के आलोचना की भाषिक संवेदना के अन्तर्विरोध बहुत कुछ कह जाते हैं।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचना

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी काव्यालोचन में रामस्वरूप चतुर्वेदी की भूमिका प्रतिनिध आलोचक के रूप में रहीं है उनकी आलोचना में विफलता वैविध्य और कर्म कौशल तीनों चरितार्थ हुए हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी के लिए स्वाधीनता एक ऐसा मूल्य रहा है कि जिसे उन्होंने हर कीमत पर चाहे वह मध्यकालीन काव्य संवदेना हो या आधुनिक काव्य संवदेना जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी आलोचना न केवल सार्वजनिक है बल्कि गहरे अर्थ में समाजिक सांस्कृतिक समीक्षा भी है। उनकी यही समीक्षा दृष्टि भक्तिकाल के विकास को कुछ यों रेखांकित करती है। “भक्तिकाव्य हिन्दी समाज की उदारतम चेतना का दस्तावेज हैं कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, इस युग के श्रेष्ठ कवि हैं यह मान्यता सर्वस्वीकृत है इसका निहितार्थ है कि यहाँ हिन्दू मुसलमान ब्राहममण दलित, पुरूष, स्त्री समाज के सभी वर्गो का साझा रचना कर्म है। भले वे वर्ग समान्य तौर पर समाज में अपना अलगाव बनाये रखते हैं यों हिन्दी जीवन की व्यापक समरसता का अन्यतम प्रमाण है हिन्दी भक्ति काव्य फिलहाल भक्ति के आवरण में सब समान थे। जबकि समाज में जाति, लिग धर्म प्रदेश देश के आधार पर आज भी भेद किए जा रहे हैं। यानी भक्तिकाल की श्रेष्ठता को कालावादी एवं प्रगतिवादी दोनों स्वीकार करते है। इस अंतर को भासिक संवेदना के धरातल पर ही समझा जा सकता है।”[38] वास्तव में रामस्वरूप चतुर्वेदी अपनी आलोचना में सामाजिक सांस्कृतिक लेखन को महत्ता प्रदान की है इस तरह के लेखन को वे बड़ा रचना कर्म मानते हैं।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में – डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का स्थान अग्रणी आलोचको की पंक्ति में लिया जा सकता है। चतुवेदी ने अपनी आलोचना विषयक-दृष्टि जो पहले पहल भाषा की संवेदना पर लगायी वह उनकी मौलिक दृष्टि कही जा सकती है क्योंकि इसके पूर्व हिन्दी साहित्य का कोई आलोचक भाषा की संवेदना संबंधी आलोचना नहीं किया जिसे चतुर्वेदी जी ने किसी साहित्यिक रचना का प्रमुख अंग माना है क्योंकि हम सब जानते हैं कि किसी काल की कोई भी रचना कितनी ही क्यों न उच्चकोंटि की मानी जाय पर यदि उसकी भाषा में वह सहजता, सरलता, बोधगम्यता न हो तो उस कृति को उच्चकोटि की कहना ना समझी कही जायेगी। चतुर्वेदी जी ने हिन्दी आलोचना को मनुष्य के जातीय जीवन और उसकी संस्कृति से जोड़ कर देखा-परखा है। आचार्य शुक्ल का “विरूद्वों का सामंजस्य’ रामस्वरूप चतुर्वेदी के पूरे रचना-कर्म की बहुत भारी विशेषता है उनकी मान्यता है कि “कवि का काम यदि दुनिया में ईश्वर के कामों को न्यायोचित ठहराना है तो साहित्य के इतिहासकार का काम है कवि के कामों को साहित्येतिहास की विकास-प्रक्रिया में न्यायोचित दिखा सकना।” कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य का इतिहासकार को किसी भी प्रर्वाग्रह से ग्रसित होकर किसी भी घटना या कवि के विषय में टिप्पणी करने की छूट चतुर्वेदी जी नहीं देते 370, अन्यथा उसके साथ अन्याय ही होगा और जिस उद्देश्य से कोई इतिहासकार इतिहासग्रन्थ की रचना कर रहा होता है उस लक्ष्य के उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो पाती क्योंकि किसी इतिहासकार और आलोचक द्वारा किसी काल या कवि तथा उसकी रचना के विषय में गुण या दोषों के द्वारा की गयी विवेचना किसी पाठक को भ्रमित कर सकती है उदाहाण स्वरूप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्योंतिहास के अग्रणी इतिहासकार है जिनका इतिहास ग्रन्थ सर्वमान्य तथा प्रामाणिक माना जाता है परन्तु कबीर के विषय में की गयी टिप्पणी कि कबीर में कवि जैसा कोई गुण ही नहीं है वे केवल समाज सुधारक हैं। जिसकी प्रतिक्रिया में कुछ समय बाद डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को ‘भाषा का डिक्टेटर’ कहा है और भाषा परिपे्रक्ष्य में टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि- ‘भाषा में इतनी सामर्थता नहीं कि इसुक्कड़ की बात को न माने बन पड़े तो सीधा-सीधा नहीं तो दरेरा देकर।” इस प्रकार की अनेक टिप्पणियाँ हिन्दी साहित्य में भरी पड़ी है जो एक सामान्य पाठक को भ्रमित करती रहती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 11
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 54
3. हिन्दी साहित्य की भूमिका-हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 26
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 79
5. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 77
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 134
7. हिन्दी आलोचना-विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ0 16

8. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 75

9. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 471

10. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 99

11. हिन्दी आलोचना-विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, पृ0 207

12. भक्ति काव्य यात्रा-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 9

13. साहित्य के नए दायित्व-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 23

14. हिन्दी गद्य विन्यास और विकास-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 8

15. काव्यभाषा पर तीन निबन्ध-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 9

Corresponding Author

Renu Mittal*

Assistant Professor, RKSD College, Kaithal, Haryana